



THE TIMES OF INDIA

Date: 02-09-26

Current Topics

Himalayas have immense untapped hydel potential, but planners should weigh risks before commissioning dams

TOI Editorials



Dams have been around for at least 5,000 years, but until 1880s they were built mainly for irrigation, flood prevention, and storing or diverting water. Once electricity came into the picture, though, dams quickly became insanely ambitious. Look at China's Three Gorges Dam, for example, or the \$168bn project being built on Brahmaputra's course through Tibet. It's not a matter of scale alone. Bhakra was massive for its time, but it was set almost at the end of Satluj's mountainous course. Now, large dams are being built higher and higher upstream. That isn't a problem of itself when mountains are sturdy and river flows predictable. But that doesn't sound like the Himalayas.

Last Wednesday's devastating flood in Bhote Koshi river is only the latest reminder of the risks we run while trying to transform the Himalayas with dams, roads, tunnels, etc. Back in 1950s or 1960s, when many blueprints for Himalayan dams were made, global warming was not a concern. You had to worry about cloudbursts, and monsoon floods, and factor those into designs. Now, warming is making slopes and glaciers unstable. The Bhote Koshi flood occurred after a glacier broke. We saw this closer home in 2021, when a similar rock-and-ice avalanche destroyed Uttarakhand's Rishiganga hydel project.

Engineers use decades of rainfall and waterflow data to design dams with adequate safety margins. But how do you factor millions of tonnes of rock and ice coming down in seconds? Scientists say many Himalayan peaks are held together by "permafrost"-like nuts in an ice cream, rocks and mud stick together only till the ground remains frozen. In a warmer world, that can't be taken for granted. The next glacier collapse, and the flood it causes, could be far worse.

That should give pause to planners eyeing the untapped hydel potential of the Himalayas. World's energy demand is growing rapidly. AI and electrification of transport have become the latest drivers, which explains why, say, Alphabet has signed multi-billion-dollar commitments for hydroelectricity in US. India cannot give up hydel either. But we need new assessments and technologies to tackle new risks. Dams and hydel plants take years to build, but can be destroyed in minutes, as we saw at Rishiganga. If higher safety margins push up costs, and make some plans unviable, let's not hesitate to shelve them. Safety of

ecosystems, people and projects-in which national resources are invested-should be a major deciding factor.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 02-09-26

The Himalayas Need A New Blueprint

ET Editorials

Even as rescue and recovery remain a priority after last week's devastating floods in Rasuwa, Nepal is moving to the next phase: rebuilding. As it does so, Nepal-and, indeed, the wider Himalayan region-must reconsider how it rebuilds. The focus must shift from reactive repairs to proactive infrastructure management, with resilience and climate risk becoming central to all future development projects. The Rasuwa floods were more than an extreme weather event. They were a real-time manifestation of a polycrisis, in which global warming, climate pressures, biodiversity decline, water insecurity, infrastructure vulnerabilities, social inequalities and governance failures interacted in complex ways. Rebuilding must account for these interconnected risks to create greater resilience.

Climate change is destabilising the Himalayan ecosystem. So, the rebuilding effort must mitigate, limit and reduce the destabilising impacts of climate change, while also reducing human activities. Tackling these adverse impacts requires disaster-resilient infra to be mainstreamed into development. Accounting for climate risk and building resilient infrastructure means reworking the entire value chain-from planning and choice of materials to design and location-in ways that reflect the carrying capacity and fragility of the Himalayan ecosystem. AI can strengthen resilience and adaptation, particularly through robust early-warning systems.

The countries of the region must work together to develop cross-border mechanisms for information-sharing, monitoring and regulating infrastructure development in ways that are fair, transparent and sustainable. This is critical to effectively addressing and learning to live with the cascading risks confronting the Himalayas.



Date: 02-09-26

समझी जाएं जेन - जी की आकांक्षाएं

डा. मनिष दाभाडे, (लेखक जेएनयू में एसोसिएट प्रोफेसर हैं)



आज भारतीय राजनीति में जेन जी को लेकर जो हलचल दिख रही है, वह कोई अचानक उभरा हुआ रुझान नहीं है। यह एक बड़े बदलाव की स्वीकृति है। सवाल यह है कि क्या यह पीढ़ी वाकई राजनीति में इतनी अहम है या फिर मीडिया के एक हिस्से और इंटरनेट मीडिया की देन है? सच्चाई इन दोनों के बीच है। बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने वाली बात यह है कि हर चुनावी विश्लेषण अब जेन - जी को किसी जादुई ताकत की तरह पेश करने की जल्दी में है। वह भी तब जब हमारे चुनाव अब भी बहुत हद

तक स्थानीय मुद्दों, जातिगत समीकरणों, सरकारी योजनाओं और नेताओं की छवि से ही तय होते हैं। भारत की करीब एक चौथाई आबादी जेन- जी है, लेकिन इतनी बड़ी संख्या के बावजूद राजनीतिक फैसलों के केंद्र में अपेक्षित स्थान नहीं पा रही। यही असंतुलन इसे अहम बना देता है। जब कोई इतना बड़ा तबका संस्थाओं के भीतर अपनी बात कहने की जगह नहीं पाता, तो वह संस्थाओं के बाहर अपनी आवाज दूढ़ने लगता है।

जेन - जी की प्रकृति और स्वरूप पर विचार करें तो यह कोई एक जैसा एकरूप समूह नहीं है। यह इलाके, भाषा, जाति, वर्ग और आर्थिक हैसियत के हिसाब से बहुत अलग-अलग है। इसे "वोट बैंक " कहना उसकी असली तस्वीर को छोटा करके देखना होगा। बेंगलुरु के किसी स्टार्टअप में काम करने वाला युवक, प्रयागराज में सरकारी नौकरी की तैयारी कर रही छात्रा और किसी छोटे शहर में पारिवारिक काम- धंधा संभाल रहा लड़का, सभी जेन-जी के प्रतिनिधि हैं, लेकिन उनकी पसंद और प्राथमिकताएं भिन्नता लिए हो सकती हैं। इस पीढ़ी को किसी एक विचारधारा या किसी एक पार्टी के दायरे से बांधकर देखना उचित नहीं। इस पीढ़ी को आखिर जोड़ता क्या है ? इसका जवाब है डिजिटल दुनिया से इसका गहरा जुड़ाव। यह भारत की पहली पीढ़ी है जो स्मार्टफोन और इंटरनेट मीडिया के साथ बड़ी हुई है, जहां खबर पलक झपकते फैल जाती है।

न केवल भारत, बल्कि दुनिया भर के युवाओं में इस समय एक बेचैनी दिखाई पड़ती है। उन्हें अपना भविष्य अनिश्चित दिख रहा है। तेजी से बदलती तकनीक, आटोमेशन और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की वजह से नौकरियों पर मंडराता खतरा और सत्ता में बैठे लोगों के प्रति गहराता अविश्वास उन्हें परेशान कर रहा है। पिछले दो वर्षों में नेपाल, इंडोनेशिया, मेडागास्कर, मोरक्को और पेरू जैसे देशों में युवाओं के नेतृत्व वाले आंदोलनों ने सरकारों को हिला दिया या गिरा भी दिया। इन सभी आंदोलनों में यही एक समान पहलू था कि यह कोई विचारधारा की लड़ाई नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार, चंद लोगों की चांदी और नीतियों से स्वयं को बाहर रखे जाने के खिलाफ गुस्सा था। भारत का युवा भी अपने फोन की स्क्रीन पर यह सब देखता है। इसलिए यह असंतोष अब सीमाओं के आरपार महसूस होने लगा है। अपने देश में देखें तो यह बेचैनी पढ़ाई और नौकरी के बीच बढ़ती दूरी से भी पैदा होती है। एक पूरी पीढ़ी को पढ़ने, हुनर सीखने और मेहनत करने के लिए कहा गया, लेकिन जब परीक्षा में

गड़बड़ी, भर्ती में देरी और अवसरों में अभाव की बात सामने आती है, तो यह इंसाफ न मिलने का गहरा दर्द बन जाती है। पढ़े- लिखे बेरोजगारों की बढ़ती संख्या यही बताती है कि डिग्रियां तो बढ़ी हैं, लेकिन उस हिसाब से प्रतिष्ठा वाली नौकरियां नहीं बढ़ीं। अगर राजनीतिक दल इस मुश्किल को सिर्फ एक संवाद की समस्या मानकर हल करने की कोशिश करेंगे और सोचेंगे कि इंस्टाग्राम रील्स यूट्यूब वीडियो, थोड़ी और "कूल" भाषा से बात बन जाएगी तो यह एक बड़ी गलती होगी। नए जमाने के मंचों को अपनाना जरूरी है, लेकिन सिर्फ इतना काफी नहीं। एक वायरल रील किसी युवा के सालों की मेहनत के बाद मिली निराशा को मिटा नहीं सकती। जब असल समस्या संस्थाओं की हो तब अच्छी पैकेजिंग नाराजगी को कुछ समय के लिए टाल तो सकती है, लेकिन हमेशा के लिए खत्म नहीं कर सकती। समाधान तीन पहलुओं में निहित है। भरोसा, आर्थिक अवसर और राजनीतिक भागीदारी। भरोसा तब बनता है जब तंत्र साफ-सुथरा हो, जब परीक्षा और भर्ती की प्रक्रिया निष्पक्ष हो और वादों की पूर्ति हो। आर्थिक अवसर तब बनते हैं जब पढ़ाई को नौकरी के अनुकूल बनाया जाए। जब कारखानों, सेवा क्षेत्र और नई तकनीक में अच्छी नौकरियां बनें और उद्यमिता सिर्फ एक नारा न रहकर वास्तविकता में रूपांतरित हो। राजनीतिक भागीदारी भी तभी मायने रखती है जब युवाओं को सिर्फ प्रचार में चेहरा दिखाने के लिए नहीं, बल्कि नीति बनाने, संगठन चलाने और फैसले लेने के मोर्चे पर समायोजित किया जाए।

राज्य-व्यवस्था के संदर्भ में भारतीय परंपरा भी खासी समृद्ध रही है। आचार्य चाणक्य ने "राजर्षि" की बात कही थी। अर्थात् एक ऐसा शासक जो सत्ता का उपयोग निजी लाभ के लिए नहीं, बल्कि जनता की भलाई के लिए करता है ? जो खुद अनुशासन में रहता है और जिसकी असली ताकत जनता के भरोसे से आती है, न कि सिर्फ पद से राजर्षि की संकल्पना सत्ता को सेवा मानती है। इसमें जनता की नब्ज को समझा जाता है। दंभ से मुक्त होकर आलोचना को गले लगाना पड़ता है। इसमें तात्कालिक लोकप्रियता से अधिक विरासत के निर्माण को महत्व दिया जाता है। जेन-जी के परिप्रेक्ष्य में यह संकल्पना बहुत सार्थक लगती है। इस पीढ़ी को न लंबे भाषण चाहिए और न अनावश्यक प्रचार या मार्केटिंग उसे ऐसा नेतृत्व चाहिए, जो सत्ता को अपना हक नहीं, अपितु दायित्व समझे। जो फैसला लेने से पहले सुनना जानता हो। जो व्यक्ति संस्थाओं को वरीयता दे और जो युवाओं को हाशिए पर नहीं, बल्कि मुख्यधारा का हिस्सा बनाए। राजर्षि की यह संकल्पना हमें यही सिखाती है कि असली और टिकाऊ भरोसा प्रचार से नहीं, बल्कि विनम्रता और जिम्मेदार शासन से ही कमाया जाता है। भारत में जेन जी की आकांक्षाएं किसी एक चुनाव या एक अभियान की बात नहीं हैं। यह भारत के लोकतंत्र के आने वाले कल की दिशा तय करने वाला सवाल है। जो भी नेतृत्व राजर्षि की संकल्पना को आत्मसात कर उसके अनुरूप आचरण करेगा, वही इस पीढ़ी का भरोसा जीत पाएगा।

शांति का संदेश

संपादकीय

युद्ध मानव सभ्यता की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक है। इतिहास गवाह है कि किसी भी युद्ध ने समस्याओं का स्थायी समाधान करने के बजाय नई जटिलताओं को जन्म दिया है। अपनी जीत का डंका बजाने वाला देश भी वास्तव में बहुत कुछ खो देता है। युद्ध के परिणाम जान-माल की भारी क्षति, आर्थिक बर्बादी, विस्थापन और सामाजिक अस्थिरता के रूप में सामने आते हैं। यह केवल दो देशों या दो पक्षों के बीच सीमित नहीं रहता, बल्कि इसका असर सीमाओं को पार कर अर्थव्यवस्था, व्यापार, ऊर्जा और खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौतियां पैदा करता है। रूस-यूक्रेन और पश्चिम एशिया में जारी संघर्ष इसके उदाहरण हैं। इनसे बनी परिस्थितियों से पता चलता है कि आज की परस्पर जुड़ी हुई वैश्विक व्यवस्था में किसी एक क्षेत्र की अस्थिरता का असर पूरी दुनिया पर पड़ सकता है। भारत हमेशा वैश्विक शांति का समर्थक रहा है और युद्ध के बजाय महात्मा बुद्ध के मार्ग पर चलने का संदेश देता रहा है। इसी प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए किर्गिस्तान के बिश्केक में शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मेलन के मौके पर रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साथ बैठक में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अंतहीन युद्ध के बजाय इसके अंत की ओर बढ़ने की वकालत की।

गौरतलब है कि पिछले करीब साढ़े चार वर्षों से जारी रूस - यूक्रेन युद्ध का सबसे बड़ा प्रभाव ऊर्जा और खाद्य सुरक्षा पर पड़ा है। रूस दुनिया के प्रमुख तेल, गैस और उर्वरक उत्पादक देशों में से एक है, जबकि यूक्रेन गेहूं, मक्का और सूरजमुखी जैसे कृषि उत्पादों का महत्वपूर्ण निर्यातक रहा है। मगर युद्ध के कारण इन वस्तुओं का उत्पादन, परिवहन और निर्यात प्रभावित हो रहा है। काला सागर के रास्ते अनाज की आपूर्ति में रुकावट ने कई देशों में आवश्यक वस्तुओं की कीमतों और खाद्य सुरक्षा को लेकर चिंता बढ़ाई है। पश्चिम एशिया में जारी संघर्ष ने इस संकट को और गंभीर बना दिया है। यह क्षेत्र ऊर्जा और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए महत्वपूर्ण है। होर्मुज जलमार्ग को बंद किए जाने से तेल और गैस की वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला बाधित हुई है, जिससे भारत समेत कई देशों को ऊर्जा संकट का सामना करना पड़ रहा है। संघर्ष के इन मोर्चों से समुद्री मार्गों में जोखिम बढ़ा है और जहाजों के लंबे वैकल्पिक रास्ते अपनाने से माल बुलाई की लागत भी बढ़ी है, जिसका सीधा असर आम उपभोक्ताओं पर पड़ा है।

ऐसे में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का यह संदेश और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि युद्धकाल का हर दिन मानवता को पीछे ले जाता है, जबकि शांति की दिशा में उठाया गया हर कदम नई आशा, उत्साह और समाधान की ओर ले जाता है। प्रधानमंत्री ने यह भी दोहराया कि भारत अपनी ओर से रूस-यूक्रेन और पश्चिम एशिया में संघर्षों को समाप्त करने के लिए हर संभव एवं जरूरी कदम उठाने को तैयार है, क्योंकि इसका वैश्विक समुदाय पर बहुत गहरा असर पड़ रहा है। इन संघर्षों के बहुआयामी प्रभाव पर नजर डालें, तो इनसे विश्व की भू-राजनीति में भी हलचल पैदा हुई है। अमेरिका, यूरोप, रूस, चीन और पश्चिम एशिया के देशों के बीच संबंधों में नए समीकरण

बन रहे हैं। हालांकि, भारत ने रूस और पश्चिमी देशों के साथ अपने संबंधों में संतुलन बनाए रखा है तथा वह अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप विदेश नीति तय करने के लिए प्रतिबद्ध है। आज विश्व समुदाय के सामने सबसे बड़ी आवश्यकता संघर्ष की नहीं, बल्कि संवाद, कूटनीति और सहयोग को मजबूत करने की है।



Date: 02-09-26

किर्गिस्तान में कूटनीतिक कामयाबी

एम जे अकबर, (वरिष्ठ पत्रकार व पूर्व केंद्रीय मंत्री)

सोमवार को यह शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) नहीं, दिल्ली सहयोग संगठन था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपनी कुशल कूटनीति और शांति प्रयासों के जरिये माहौल को भारत के पक्ष में बना दिया। उनके प्रयास उन दो संघर्षरत क्षेत्रों के संदर्भ में थे, जिनसे दुनिया भर में व्यापक पैमाने पर युद्ध बढ़ने का खतरा बना हुआ है।

ईरान के राष्ट्रपति मसूद पेजेशकियान के साथ बैठक भारतीय प्रधानमंत्री के एजेंडे में सबसे ऊपर थी। इस अहम मुलाकात के जरिये प्रधानमंत्री मोदी ने मक्का समझौते (पाकिस्तान, सऊदी अरब और तुर्किये के बीच हुआ रक्षा समझौता) पर हस्ताक्षर करने वाले देशों को कड़ा संदेश दिया कि एक-दूसरे की रक्षा करने या संघर्षों के दौरान सैन्य शक्ति साझा करने का वायदा करने वाले गठबंधन असल में वैश्विक सुरक्षा की काट हैं और विस्फोट के कगार पर खड़ी इस दुनिया में शांति के लिए बनी साझेदारियां ही कारगर विकल्प हैं।

भारत ने एक ऐसे देश के साथ लचीलाव व्यावहारिक रुख अपनाया, जो यह समझता है कि असली ताकत आत्मनिर्भरता से आती है, जबकि 'मक्का समझौता' जैसे करार बड़ी ताकतों से उधार ली गई ताकत पर टिके होते हैं और वे फिल्मी योद्धाओं जैसे सतही अंदाज में निभाए जाते हैं। किर्गिस्तान में भारत और ईरान के बीच खास तालमेल दिखा, वह भी मक्का समझौते और अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की उस धमकी के बीच, जिसमें उन्होंने कड़े प्रतिबंध लगाकर तेहरान को खत्म करने की बात कही थी, क्योंकि अमेरिकी बम और मिसाइलें ईरान में नाकाम साबित हुई हैं।

ईरान ने भारत को शांति के लिए दखल देने का न्योता दिया और दोनों देशों ने चाबहार बंदरगाह की अहम परियोजना को फिर से शुरू करने पर सहमति जताई। भारत ने व्यापार पर बात की और अपनी यह मंशा दोहराई कि होर्मुज जलमार्ग से जहाजों की आवाजाही सुरक्षित और बेरोक-टोक होनी चाहिए।

भारत और पाकिस्तान के बीच के अंतर को ईरान बखूबी समझता है। वह जानता है कि अगर नई दिल्ली किसी मुद्दे पर तेहरान से अलग राय रखती है, तो ऐसा भारत के राष्ट्रीय हित की वजह से होता है। जबकि, पाकिस्तान जब ईरान से अलग रुख अपनाता है, तो ऐसा करने का आदेश उसे अपने आकाओं से मिला होता है। सच यही है कि पाकिस्तान एक निर्भर देश है, जबकि भारत खुदमुख्तार !

भारत और ईरान अपनी अस्मिता व आत्मविश्वास को लेकर गहरी समझ रखने वाले देश हैं, जिनका अपना-अपना समृद्ध सभ्यतागत इतिहास है। दोनों का यही मानना है कि द्विपक्षीय रिश्ते किसी बहुपक्षीय दिखावे से कहीं अधिक मजबूत होते हैं। बैठक के बाद ईरान की तरफ से कहा गया कि भारत शांति और सुरक्षा का जरिया बन सकता है, खासकर तब, जब बकौल तेहरान, वाशिंगटन ने 'युद्ध, असुरक्षा और मर्जी थोपने का रास्ता चुना है ।

गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी की धरती के नेता के तौर पर प्रधानमंत्री मोदी ने भारत के दोस्त रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन को भी यही संदेश दिया कि युद्ध कोई समाधान नहीं है । भारत वही बात कहता है, जिसपर वह खुद अमल करता है। गौरतलब है, पाकिस्तानप्रायोजित आतंकवाद के रूप में बर्बर हमले का जवाब भारत ने हमेशा सिलसिलेवार, मजबूत और संयमित तौर पर दिया है । 'ऑपरेशन सिंदूर' के दौरान भी भारत ने आतंकी ठिकानों और आतंकवादियों को पनाह देने वाले सैन्य अड्डों को ही निशाना बनाया। इसमें किसी आम नागरिक को नुकसान नहीं पहुंचाया गया, क्योंकि पाकिस्तानी तानाशाहों के गुनाहों की सजा वहां के आम नागरिकों को नहीं दी जा सकती।

पाकिस्तान को सामने बिठाकर सच सुनाना ही था । बेशक, सच्चाई से उसने अपने कान बंद कर रखे हैं, लेकिन प्रधानमंत्री मोदी ने शिखर बैठक में आतंकवाद की चर्चा करते हुए साफ-साफ कहा कि दोहरे मापदंडों के लिए कोई जगह नहीं है। उन्होंने आतंकवाद के पूरे 'इको-सिस्टम' को खत्म करने की जरूरत बताई, ताकि आतंकियों को न सुरक्षित ठिकाना मिल सके और न इमदाद । संभवतः इसी खुन्नस में मंगलवार को जब पाकिस्तान के प्रधानमंत्री कार्यालय ने एससीओ बैठक का गुप फोटो एक्स हैंडल से जारी किया, तो उसमें भारतीय प्रधानमंत्री को हटा दिया। विवाद के बाद पूरी तस्वीर जारी की गई।

हालांकि, भारत और चीन का रिश्ता भी कभी-कभी तनावपूर्ण हो जाता है, लेकिन यह बहुत हद तक सीमा से जुड़ा हुआ है, खासकर 1962 के बाद से अच्छी बात है कि सीमावर्ती इलाकों में अस्थिरता के बावजूद हमने यही तय कर रखा है कि आपसी विवाद का निपटारा जंग से नहीं, बातचीत से होगा । एससीओ बैठक से ठीक पहले भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकर अजीत डोभाल बीजिंग गए थे, जहां उन्होंने लंबी बैठकें कीं। चीन का सत्ता-सदन डोभाल को खूब पसंद करता है, क्योंकि वह सीधी और खरी बोलना पसंद करते हैं।

उनकी मुलाकात का यह असर हुआ कि वहां के सुप्रीम कमांडर ने भारत-विरोधी रुख रखने वाले एक जनरल को देश की शीर्ष राजनीतिक सलाहकर संस्था और अन्य प्रमुख पदों से हटा दिया । यह सिर्फ एससीओ की सफलता

के लिए नहीं, बल्कि ब्रिक्स में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के आने की कूटनीतिक तैयारी जान पड़ती है। किर्गिस्तान में मोदी और जिनपिंग ने अलग से मुलाकात करने की कोई खास जरूरत नहीं समझी, क्योंकि ब्रिक्स में व्यापार, अमेरिकी प्रतिबंध, मुद्रा सहित कई मुद्दों पर उनमें अच्छी और लंबी बातचीत होने की उम्मीद है। माना यही जा रहा है कि चीन के साथ जिस तरह के स्थिर और उत्पादक संबंध बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं, वह अनवरत जारी रहेगा।

प्रधानमंत्री मोदी ने किर्गिस्तान में उस भूमिका के निर्माण में सफलता हासिल की, जिसकी बुनियाद पर वह सितंबर के मध्य में दिल्ली में होने वाले ब्रिक्स शिखर सम्मेलन की अध्यक्षता करेंगे। वह ब्रिक्स को स्थिरता और प्रगति के एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में विकसित करना चाहते हैं, खासतौर पर ऐसे समय में, जब संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता लगातार कम हो रही है और युद्ध के कारण आर्थिक उथल-पुथल बढ़ गई है। उल्लेखनीय है कि यह अराजकता 21वीं सदी में जन्मी पीढ़ी के भविष्य को खतरे में डाल सकती है।

प्रधानमंत्री कहते हैं, युद्ध में बिताया गया हर दिन मानवता को पीछे धकेलता है। वाकई, दुनिया के सामने आज यही सबसे बड़ी चुनौती है।
